सद्दाम को फाँसी : बर्बरों का न्याय

• प्रसेन

मुकदमे का एक लम्बा स्वाँग रचने के बाद अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने अपने "न्याय" को अमली जामा पहनाते हुए 30 दिसम्बर को सद्दाम हुसैन को फाँसी दे दी। सद्दाम हुसैन पर यह आरोप लगाया गया था कि उन्होंने कुर्दों तथा शिया मुसलमानों का नरसंहार कराया था। इसमें कोई शक़ नहीं है कि सद्दाम ने बा'थ पार्टी विरोधी शियाओं और कुर्दों का क़त्लेआम करवाया था और साथ ही अरब विश्व में कम्युनिस्टों के सबसे बड़े नरसंहार में से एक को सद्दाम ने ही अंजाम दिया था, हालाँकि पश्चिमी मीडिया इसकी चर्चा कम ही करता है। लेकिन यह भी उतना ही बड़ा सच है कि जब सद्दाम हुसैन ने इन काले कारनामों को अंजाम दिया था तब अमेरिकी साम्राज्यवादियों का हाथ उनकी पीठ पर था। वैसे अगर इस तर्क पर चला जाय तो जिस आधार पर कुछ हज़ार लोगों को मौत के घाट उतारने के आरोप में सद्दाम को फाँसी की सज़ा दी गयी तो दसियों लाख इराक़ियों के नरसंहार के लिए ज़िम्मेदार जार्ज बुश जूनियर और उसके बाप को कई बार फाँसी के फंदे से झुलाना चाहिए। जब इराक़ और ईरान के बीच युद्ध चला था तो सद्दाम की सत्ता को अमेरिका का पूरा समर्थन प्राप्त था। उस युद्ध में ईरान से अपनी दुश्मनी निकालने के लिए अमेरिका ने इराक़ को हर किस्म का समर्थन दिया था।

यह भी एक ग़ौर करने वाली बात है कि सही मायनों में सद्दाम हुसैन अरब विश्व के चन्द धर्मनिरपेक्ष शासकों में से एक था। शियाओं और कुर्दों की हत्या उसने इसलिए नहीं करवायी थी कि वह सुन्नी था। खुद बाथ पार्टी की सरकार में बड़ी संख्या में शिया मंत्री और अधिकारी थे। सद्दाम ने एक तानाशाह की तरह अपने विरोधियों का सफ़ाया किया। लेकिन यह भी सच है कि इराक़ अरब देशों में सबसे उन्नत देशों में से एक था। वहाँ इस्लामी कट्टरपंथ को सद्दाम ने कभी जड़ें नहीं जमाने दी। इसके अतिरिक्त आधुनिक शिक्षा व्यवस्था, उद्योगों, तकनोलॉजी के जरिये इराक़ के आधुनिकीकरण के काम को सद्दाम ने अंजाम दिया। वहाँ रहन-सहन और पहनावे के मामले में स्त्रियों को काफ़ी आज़ादी मिली और कठमुल्लावादी-कट्टरपंथियों को छूट नहीं दी गयी कि वे मॉरल पुलिसिंग कर सकें। इस सबके दौरान सद्दाम ने अमेरिका समर्थक नीतियों को लागू किया और अमेरिका ने इराक़ का खूब इस्तेमाल किया। इसमें कोई शक़ नहीं है कि सद्दाम एक तानाशाह था जिसने अपने विरोधियों के प्रति कोई नरमी नहीं बरती और उन्हें बेरहमी से मौत के घाट उतारा। लेकिन, इसी सद्दाम से वर्तमान अमेरिकी उपराष्ट्रपति डिक चेनी आज से लगभग 25 वर्ष पहले बग़दाद में हाथ मिला रहा था, उस समय जिस समय सद्दाम हुसैन उन सभी अपराधों को अंजाम दे रहा था जिनके लिए उसे फाँसी दी गयी थी। जब इराक़ अपने आपको अमेरिका की जकड़बन्दी से आज़ाद कर अपने हितों की स्वतंत्र रूप से पूर्ति करने लगा तो वही सद्दाम हुसैन अमेरिका की आँखों की किरकिरी बन गए जो उसकी आँखों का तारा हुआ करते थे। ऐसा अमेरिका के साथ हमेशा ही होता है। वह हमेशा ही भस्मासुर पैदा करता रहा है। वही तालिबान जो अमेरिका की शह पर सोवियत साम्राज्यवादियों से लड़ रहा था, लगभग तीन दशक बाद अमेरिका का शत्रु बन गया। वही सद्दाम जो अरब में अमेरिका का एक अच्छा समर्थक था, दो दशक बाद अमेरिका का दुश्मन बन गया।

अभी तक आ रही ख़बरों से साफ़ है कि अमेरिका इराक़ में बहुत बुरा फँस गया है। ब्रिटेन ने इराक़ में अपने सैनिकों में कटौती कर दी है। यूरोप के अन्य कई देश पहले ही यह काम कर चुके हैं। अमेरिका के लगभग साढ़े तीन हज़ार सैनिक इराक़ में मारे जा चुके हैं। मार्च तक अमेरिका के कई हेलीकॉप्टर इराक़ के मुक्तियोद्धाओं ने मार गिराए हैं। अमेरिका तक को मानना पड़ा है कि वह फँस गया है और इराक़ युद्ध अब वियतनाम युद्ध जैसी शक्ल अख़्तियार करता जा रहा है। इराक़ से जो सैनिक ज़िन्दा लौट भी रहे हैं उन्हें तमाम मनोवैज्ञानिक बीमारियाँ हो गयी हैं और लम्बे समय तक वे डरे-डरे रहते हैं; कई बार तो ज़िन्दगी भर के लिए उनकी यही हालत हो जाती है। उन्हें नींद नहीं आती; लगता रहता है कि अभी कोई उनपर हमला कर देगा, वगैरह। दूसरी तरफ़, अमेरिका में बुश की लोकप्रियता में भयंकर कमी आयी है। लगभग तय है कि अगले चुनाव में रिपब्लिकन पार्टी हारेगी। इराक़ युद्ध ने जितना आर्थिक फ़ायदा अमेरिका को दिया है लगभग उतना ही नुकसान कराकर हिसाब बराबर कर दिया है। तो इराक़ पहले ही काफ़ी नुकसान पहुँचा चुका है और अभी लगातार पहुँचा रहा है।

एक दूसरा पहलू भी है। वह यह है कि मौजूदा घटनाक्रम को देखते हुए ऐसा लगता है अमेरिका अपने कुछ मंसूबों में आंशिक तौर पर सफल हुआ है। अमेरिका की निगाह पिछले लम्बे समय से इराक़ के अकूत तेल भण्डार पर थी। लेकिन उस पर कब्ज़े में अमेरिका के सामने दो प्रमुख बाधाएँ थीं। पहली सद्दाम हुसैन की सत्ता, और दूसरी इराक़ की एक संगठित राष्ट्र के रूप में मौजूदगी। सद्दाम की हत्या के बाद अब अमेरिका सुन्नी, शिया और कुर्द आबादी के आपसी अन्तरविरोधों को हवा देकर इराक़ी एकता को विघटित करने में ज़ोर-शोर से जुटा है। हालाँकि, एक राष्ट्र के रूप में इराक़ का विघटन तो अमेरिका का दिवास्वप्न ही हो सकता है, परन्तु वहाँ सुन्नी, शिया और कुर्दों के संघर्ष को देखते हुए इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि अल्पकाल के लिए इराक़ी

एकता को कमज़ोर करने में अमेरिकी साम्राज्यवादियों को आंशिक सफलता मिली है। परन्तु सच्चाई का दूसरा पहलू यह है कि अमेरिका के इस कारनामे से इराक़ ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण अरब जनता में अमेरिका के ख़िलाफ़ नफ़रत का जो सैलाब उमड़ रहा है वह दूरगामी तौर पर, अमेरिकी साम्राज्यवाद के विरोध में एक सर्व-अरब एकता को जन्म देगा। वहीं इराक़ी जनता में फूट डालने के षड़यंत्रों के बाद भी हाल में किये गये कुछ सर्वेक्षणों के मुताबिक, 90 प्रतिशत से ज़्यादा सुन्नियों तथा 60 प्रतिशत से ज़्यादा शियाओं ने कहा है कि अमेरिकी सैनिकों पर हमले पूरी तरह जायज़ और ज़रूरी हैं। 70 प्रतिशत से भी अधिक इराक़ी, जिसमें कुर्द भी शामिल हैं, चाहते हैं कि अमेरिकी फौजें उनका देश छोड़कर चली जाएँ। इसके अलावा, इराक़ी जनता अमेरिकी हमले का भरपूर जवाब दे रही है। इराक़ में मरने वाले अमेरिकी सैनिकों की संख्या 4000 के करीब पहुँच रही है। इसके अलावा दसियों हज़ार अमेरिकी सैनिक अपंग, घायल या मानसिक रोगों के शिकार हैं। इराक़ में अमेरिकी कारनामों ने यह साबित कर दिया है कि दुनिया को "जनतंत्र" का पाठ पढ़ाने वालों का जनतंत्र कैसा होता है। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद पूरी दुनिया में बतिस्ता, मार्कोस, पिनोशे, दुवालियर, सुहार्तो जैसे जितने भी सैनिक तानाशाहों ने अपने देश में कई नरसंहार और बर्बर अत्याचार किये, वे सभी अमेरिकी कठपुतली थे। इज़रायल फिलिस्तीनी जनता पर आधी सदी से जो क़हर बरपा कर रहा है वह अमेरिकी मदद से ही सम्भव है। खुद अमेरिका के भीतर अश्वेतों, अप्रवासियों तथा सत्ता-विरोधियों पर जो अत्याचार होते रहे हैं, वे अमेरिकन स्टाइल डेमोक्रेसी की असलियत को दिखला देते हैं।

सद्दाम को मौत की सज़ा न्याय के इतिहास में एक "अभूतपूर्व" उदाहरण है! सज़ा किसी अन्तर्राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल ने नहीं बल्कि कठपुतली जजों की एक बेंच ने सुनयी। इन जजों की नियुक्ति एक ऐसी सरकार ने की जिनको ऐसे चुनावी प्रहसन के बाद चुना गया था जिसमें देश की बहुसंख्यक आबादी ने हिस्सा नहीं लिया था। इस सरकार के हाथ में आन्तरिक प्रशासन का भी बड़ा अधिकार नहीं है। पूरा प्रशासन वस्तुतः अमेरिकी सेना के हाथों में है। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि जजों की बेंच के जिन दो जजों से फाँसी की सज़ा पर मुहर लगाने की उम्मीद नहीं थी उन्हें बदल दिया गया। सद्दाम के एक वकील को गोली मार दी तथा कई क़ानूनी सलाहकारों को इराक़ जाने का वीज़ा तक नहीं दिया गया। ग़ौरतलब यह भी है कि सरकार के (कुर्द मूल) राष्ट्रपति ने फाँसी के हुक्मनामे पर हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया। फिर भी सद्दाम को आनन-फानन में फाँसी दे दी गयी। हालाँकि अपने साम्राज्यवादी मंसूबों को पूरा करने की झोंक में अन्धा अमेरिका जब सद्दाम के पास रासायनिक तथा नाभिकीय हथियारों का नकली बहाना बनाकर समूचे विश्व जनमत को धता बता सकता है तो यह उसके लिए कोई बड़ी बात नहीं थी। हाँ, यह सच्चाई उजागर ज़रूर हो गयी है कि संयुक्त राष्ट्र जैसे अन्तरराष्ट्रीय मंच रस्मी विरोध की तमाम कवायदों की आड़ में वास्तव में साम्राज्यवादी हितों की सेवा करने वाले मंचों की ही भूमिका निभाते हैं।

सद्दाम निश्चित ही पूँजीवादी तानाशाह था। कुर्दों और शियाओं पर अस्सी और नब्बे के दशक में उसकी सत्ता ने जुल्म भी किये। पर साथ हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि सद्दाम की बाथ पार्टी एक समय एक ऐसी राष्ट्रीय जनवादी चरित्र वाली पार्टी के रूप में उभरी थी जो साम्राज्यवाद तथा उसके पिट्ठू शेखों-शाहों की निरंकुश सत्ताओं के विरुद्ध आम जनता की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करती थी। बाथ पार्टी के शासन के दौरान, इराक़ में जनता को बहुतेरे जनवादी अधिकार मिले। शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाओं के मामले में काफ़ी प्रगति हुई। कला-साहित्य-संस्कृति का भी विकास हुआ। इराक़ एक धर्म निरपेक्ष अरब देश रहा है। उसके बाद सद्दाम की सत्ता में चरित्र परिवर्तन के पीछे मूल तर्क वही था जो कि साम्राज्यवाद विरोधी संघर्षों में विजय पाने के बाद तीसरी दुनिया के नवस्वाधीन देशों के तमाम बुर्जुआ शासकों के चरित्र परिवर्तन का मूल कारण था। 'खण्डित नायकत्व' की वही पुरानी कहानी! प्रारम्भिक दौर के कल्याणकारी कार्यों के बाद बुर्जुआ जनवाद क्षरित तथा विघटित होकर प्रतिक्रियावादी होता गया। और वे पूँजीवादी विश्व व्यवस्था में अवस्थित होते गये। सद्दाम के साथ भी यही हुआ। अपनी क्षेत्रीय महत्वाकांक्षाओं तथा अन्य अरब देशों एवं बुर्जुआ शासकों से प्रतिस्पर्द्धा के चलते ही उसने ईरान के विरुद्ध अमेरिकी शह पर युद्ध छेड़ा। इन आपसी अन्तरविरोधों का फायदा अमेरिकी ने उठाया। यही दौर था जब सद्दाम की सत्ता जनता से कटकर दमनकारी होती चली गयी। साथ ही, इराक़ी जनता की सम्राज्यवादी विरोधी एकता भी विघटित होती चली गयी तथा शियाओं, सुन्नियों और कुर्दों के बीच अन्तरविरोध तीखे होने लगे। इसी दौरान, सद्दाम ने शियाओं-कुर्दों का दमन किया तथा बाथ पार्टी का सेक्युलरिज़्म भी क्षरित-विघटित होता चला गया। शियाओं और कुर्दो के हितों की दुहाई देता अमेरिका वास्तव में इन अन्तरविरोधों को खूब हवा दे रहा है ताकि विघटित इराक़ के तेल भण्डारों पर कब्ज़ा जमाने में आसानी हो। और सद्दाम ने अमेरिकी मंसूबों पर पानी फेरते हुए न केवल फिलिस्तीनी मुक्ति युद्ध का समर्थन किया बल्कि व्यापक अरब एकता की बात की। साथ ही, इराक़ का विदेशी मुद्रा भण्डार भी यूरो में करने की तरफ़ सद्दाम हुसैन की सरकार बढ़ने लगी। सद्दाम का यह कदम पूरी अमेरिकी अर्थव्यवस्था को डगमगा सकता था। नतीजतन, अमेरिका ने ऐसे जनसंहारक हथियारों के होने का आरोप लगाते हुए इराक़ पर हमला कर दिया जिसका एक भी नामोनिशाँ अमेरिका को कभी नहीं मिला और बाद में उसे तक मानना पड़ा कि ऐसे कोई हथियार नहीं थे। वैसे भी यह क्या मज़ाक है कि जनसंहारक हथियारों को सबसे बड़ा जखीरा पिछवाड़े दाबकर बैठा अमेरिका बताता है कि कौन हथियार रखे और कौन नहीं!

सद्दाम हुसैन को फाँसी के बाद इराक़ी आत्मघाती दस्तों ने अपने हमले तेज़ कर दिये हैं। वहीं केवल इराक़ी ही नहीं बल्कि समूची अरब जनता में अमेरिका के ख़िलाफ़ नफ़रत कई गुना बढ़ी है। अमेरिकी वर्चस्व का हिंसक प्रतिरोध अरब में तमाम धार्मिक संगठन कर रहे हैं जिसमें हमास, हिज़बुल्ला जैसे संगठन महत्वपूर्ण हैं। लेकिन अरब जनता जेहाद के नारे के कारण इन संगठनों के पीछे गोलबन्द नहीं हुई है। किसी अन्य जनवादी, क्रान्तिकारी नेतृत्व की अनुपस्थिति में जनता इंतज़ार तो करती नहीं रहेगी। अमेरिकी साम्राज्यवाद से बेपनाह नफ़रत और घृणा के कारण वह आज इन धार्मिक कट्टरपंथी संगठनों के झण्डे तले ही खड़ी है क्योंकि ये

(पेज 14 पर जारी)

कोई काम नहीं किया है। और भला वे यह काम करें भी क्यों? यह उनके एजेण्डे पर जो नहीं है! उधर मुसलमानों के धार्मिक नेता भी अपना उल्लू सीधा करने के लिए बहुसंख्यक मेहनतकश मुसलमान आबादी को पिछड़ेपन के अंधकार में जकड़े रखना चाहते हैं, इसलिए यह आम मुसलमान आबादी की दुर्दशा की बात कभी नहीं करते हैं। बल्कि इसके विपरीत धार्मिक कट्टरपंथ को बनाये रखने का काम इस्लामी कट्टरपंथ भी बखूबी करता है। और इस इस्लामी कट्टरपंथ के खेल का फायदा भी हिन्दू धार्मिक कट्टरपंथ ही उठाता है।

अतः अपनी बात फिर दुहराते हुए हम यह कहते हैं कि सच्चर समिति के माध्यम से मुसलमान प्रेम का जो नाटक कांग्रेस द्वारा रचा गया है, वह और कुछ नहीं बल्कि मुसलमानों में अपने खोये हुए आधार को पुनः हासिल करने की एक घिनौनी क़वायद है। उधर इस वोट बैंक को अपनी ओर खींचने की भरसक कोशिश में वामदल से लेकर मुलायम सिंह, वी.पी. सिंह व मायावती सहित सभी चुनावबाज़ पार्टियाँ जी-जान से लग गयी हैं और भाजपा के पास तो इस मुद्दे पर अपना पुराना राग छेड़ने के सिवा कोई दूसरा रास्ता बचा नहीं है। ऐसे में चुनावी मदारियों के इन तमाशों की असलियत को समझने और उसका पर्दाफ़ाश करने की ज़रूरत आज सबसे ज़्यादा है।

आइए, अब एक निगाह सच्चर समिति द्वारा मुसलमानों की इस हालत में सुधार के लिए सुझाये गये नुस्खों पर डालते हैं। जी हाँ! वही पुराना आरक्षण का नुस्खा! पिछले 60 साल में आरक्षण के इस झुनझुने से दलितों-आदिवासियों की जीवन-स्थिति में कितना सुधार आया है यह सबके सामने है। मुसलमानों के लिए शिक्षा और रोज़गार में आरक्षण लागू कर भी दिया जाय तो मात्र इतना फ़र्क पड़ेगा कि कि उनके बीच से एक अत्यन्त छोटा, सुविधाजीवी, व्यवस्थापरस्त मध्यवर्ग पैदा होगा जो गाँवों और शहरों में निकृष्टतम कोटि के उजरती गुलामों का जीवन बिताने वाली आम मेहनतकश मुसलमान आबादी से खुद को पूरी तरह काट लेगा और बेहद वफ़ादारी के साथ व्यवस्था के साथ खड़ा होगा, ठीक वैसे ही जैसे दलितों को आरक्षण के मामले में हुआ है। अतः मुसलमान समुदाय को शासक वर्ग की इन कुटिल चालों को समझना होगा। उन्हें समझना होगा कि दोयम दर्ज़े की इस हालत और साम्प्रदायिक ताक़तों के हमलों को जवाब और इससे उनकी मुक्ति आरक्षण जैसी किसी पैबन्दसाज़ी से नहीं बल्कि एक नये समाज के लिए व्यापक जनता के क्रान्तिकारी संघर्ष के साथ जुड़कर ही हो सकती है।

मुसलमानों की कुल आबादी का 80 फीसदी से भी अधिक हिस्सा मेहनतक़श है। यही स्थिति दलितों की है। सवर्ण हिन्दुओं की एक भारी आबादी उजड़कर खेतों में मज़दूरी कर रही है या औद्योगिक केन्द्रों में उजरती गुलाम के रूप में खट रही है। स्त्रियों की बहुसंख्या पूँजी और पुरुषों की दोहरी गुलामी की शिकार है। कुल मिलाकर कहा जाय तो हर जातिगत, धार्मिक, लैंगिक पहचान आज तीखे तौर पर दो खेमों में बँटी हुई है—धनाढ्य और मेहनतकश। आरक्षण या ऐसा कोई भी लॉलीपॉप मेहनतकशों की समस्याओं का समाधान नहीं है। हर जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्र के मेहनतकशों के मुद्दे एक हैं और उनकी क्रान्तिकारी एकजुटता के रास्ते इंकलाब का विकल्प ही उनके सामने मौजूद एकमात्र विकल्प है।

सद्दाम को फाँसी

(पेज 12 से जारी)

संगठन ही अमेरिकी साम्राज्यवाद का सच्चा प्रतिरोध कर रहे हैं। अरब देशों के शेख-शाह तो उसी साम्राज्यवाद के तलवेचाट और पत्तलचाट हैं। तो आख़िर जनता क्या करे? वह हमास और हिज़बुल्ला के साथ ही जाकर खड़ी होती है और अमेरिकी साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ लड़ती है। वहीं इन संगठनों ने स्वास्थ्य और शिक्षा की जनसंस्थाएँ ख़ड़ी करके जनकल्याणकारी कार्यों को अंजाम दिया है और जनता का विश्वास जीता है। लेबनान में बर्बर इज़रायली गुण्डों द्वारा मचायी गयी तबाही के बाद तेज़ी से हुआ पुनर्निर्माण हिज़बुल्ला द्वारा चलायी जा रही समानान्तर स्वास्थ्य और निर्माण व्यवस्था द्वारा ही सम्भव हो पाया। इज़रायली लुटेरों की शर्मनाक पराजय भी हिज़बुल्ला के योद्धाओं के पराक्रम और चतुराई और उन्हें लेबनानी जनता के बहादुरी भरे समर्थन का फल था। जब तक जनता का कोई क्रान्तिकारी प्रतिरोध संगठित नहीं होता तब तक जो जनता को अमेरिकी साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ संगठित करने आयेगा, जनता उसके नेतृत्व को स्वीकार करेगी।

वास्तव में अमेरिका इराक़ ही नहीं बल्कि समूचे अरब का बाल्कनीकरण करना चाहता है। इस कोशिश में उसे कुछ आंशिक सफलता भी मिली है, हालाँकि यह क्षणिक ही है। लेकिन इसके कारण समूची दुनिया में उसकी थू-थू हो रही है। अरब जनता व्यापक जुझारू एकजुटता की ओर एक कदम और बढ़ गयी है। यही वजह है कि अरब देशों के शेख-शाह शासक भी अमेरिकी युद्ध को समर्थन देने से कतराने लगे हैं, जो अमेरिका के पुराने पालतू कुत्ते थे। ये अब नया मालिक तलाशने में भी जुट गये हैं! (सन्दर्भ : पुतिन का सऊदी दौरा)। मिस्र के राष्ट्रपति हुस्नी मुबारक ने साफ़ तौर पर कहा है कि अमेरिका अरब देशों के आंतरिक मामलों में ज़रूरत से ज़्यादा हस्तक्षेप कर रहा है। वहीं अन्य साम्राज्यवादी देश भी अमेरिकी चौधराहट को अर्थपूर्ण चुनौती देने में जुटे हैं और कइयों ने देनी शुरू भी कर दी है।

वस्तुतः अरब क्षेत्र आज पूँजीवादी विश्व के अन्तरविरोधों की एक प्रमुख गाँठ बन गया है। अभी से ही लगने लगा है कि अरब के राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष आने वाले समय में साम्राज्यवाद को काफ़ी कमज़ोर करेंगे। काफ़ी कुछ उसी तरह जैसे तीसरी दुनिया के स्वाधीनता संघर्षों ने विश्व साम्राज्यवाद को एक दौर में कमज़ोर किया था। सद्दाम को तो अमेरिकी साम्राज्यवादी बर्बरों ने फाँसी दे दी। लेकिन जनता की अदालत में एक दिन इन बर्बरों के साथ भी इंसाफ़ किया जायगा।